'दामोदर...'

युद्धभूमि के प्रचंड शोर, धनुषों की टंकार और घोड़ों के टापुओं के तीव्र स्वरों के बीच भी यह चीख शत्वरी के कानों में गूंज उठी। शत्वरी ने इस चीख का पीछा किया। शवों को रौंदते हुए, घोड़ों के दलों को चीरते हुए, रक्त से सने पांव लिए वह बस बेतहाशा दौड़ती रही, एक नाम का पीछा करती हुई, 'दामोदर'!

आकाश धूमिल था, इतना कि सूर्य की लालिमा को धरती तक पहुंचने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा था। धरती फिर भी लाल थी, रक्त की धाराओं से। दामोदर धरती पर पड़ा कराह रहा था। उसकी गर्दन पर गहरा घाव बन गया था। शत्वरी चीख उठी। तुरंत नीचे बैठते हुए उसने दामोदर को अपनी गोद में ले लिया। समय के अनुपात में बढ़ी लंबी दाढ़ी के बावजूद शत्वरी ने दामोदर को पहचान लिया था। पच्चीस वर्ष बाद भी दामोदर का चेहरा ठीक वैसा ही था, जिसके आकर्षण में वह कभी भीग गई थी। शत्वरी आज भी भीगी हुई थी, मगर अपने ही आंसुओं में। उसने कभी सोचा भी न था कि दामोदर से यूं इस अवस्था में मिलना होगा, रणभूमि में, शवों के ढेर में, रक्त से नहाए हुए। शत्वरी ने तो जीवन में कभी ऐसे परिदृश्य की कल्पना भी न की थी। संगीत के सुरों में डूबी, मोगरे सी महकती, किसी पहाड़ी नदी सी उछलती-फिरती शत्वरी ऐसी कल्पना कर भी कैसे सकती थी? शत्वरी के जीवन में तो केवल संगीत के सप्तक के सुर ही बिखरे थे। वीणा के तारों से उठता सप्तक, कोमल कंठ से निकलती सरगम। दिन-रात बस इन्हीं सुरों को साधने में निकल जाते। एक साधिका से सिद्ध बनने की अभिलाषा में।

इन्हीं सुरों ने तो दामोदर से संबंध जोड़ा था। सुर और संबंध दोनों ही विचित्र होते हैं। जितनी कठिनाई से सधते हैं, उतनी ही सरलता से फिसल जाते हैं। कितनी मधुर थी वह रागिनी जिस पर शत्वरी मचल रही थी। कभी गुंजन की सात्विक धुन तो कभी दामोदर की मदिर वाणी। फिर कुछ सुर ऐसे फिसले कि फिसलते ही गए। सुर टूटे, ताल टूटी और पूरी रागिनी ही बिखर गई। बस इसी बिखरी रागिनी पर भटकती शत्वरी रंगभूमि से रणभूमि आ पहुंची थी।

एक

'ओह, यह काजल भी ना...'

आंखों के नीचे फैल गए काजल को पोंछते हुए शत्वरी ने दर्पण में अपने रूप को निहारा। नए-नए यौवन का ध्यान अपने रूप को संवारने से कहीं अधिक उसे निहारने में लगा रहता है। पूर्णिमा के चांद से गोल चेहरे पर चमकती बड़ी-बड़ी आंखों में लगा काजल, भौंहों के बीच लगी चटक लाल बिंदी, पतले रसीले होंठों पर सजी सुर्खी, खुले बालों में लटकती मोगरे की वेणी, कानों में सोने की बालियां और गले में लाल मोती जड़ी सोने की माला, उसे अपना रूप कुछ यूं लगा जैसे फूलों से ढकी किसी घाटी में बनी दो झीलों के किनारे काली घटाएं उतर आई हों।

'क्या इससे अच्छा शृंगार भी किया जा सकता है?'

अठारह वर्ष की गेहुएं रंग, मध्यम कद और छरहरी काया वाली शत्वरी ने कमर पर बंधी चांदी की करधनी को नाभि से थोड़ा नीचे सरकाया और फिर अपनी कमर पर हाथ फेरती हुई मुस्कुरा उठी।

'ओह, अदिति कब से प्रतीक्षा कर रही है। पंडित अच्युत आचार्य से संगीत सीखने जाना है। आचार्य जी समय के पाबंद हैं।'

शत्वरी दौड़ती हुई बाहर आई जहां बैलों से जुती एक गाड़ी पर बैठी अदिति उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

'इतना सजने की भी क्या आवश्यकता थी? संगीत सीखने आचार्य जी के पास जाना है, किसी गंधर्व के पास नहीं,' शत्वरी को देख अदिति ने कटाक्ष किया।

'क्या पता रास्ते में किसी गंधर्व की ही दृष्टि पड़ जाए,' शत्वरी ने खिलखिलाते

हुए कहा।

बग्घी के आकार की बैलगाड़ी में अदिति की बगल में बैठते हुए शत्वरी ने गाड़ीवान को चलने का संकेत किया।

'पंडित अच्युत आचार्य के घर चलना है न?' बैलों को हांकते हुए गाड़ीवान ने पूछा।

'हां, वे हमें संगीत सिखाते हैं,' बिना बांहों की चोली पर से ढलक आए गुलाबी दुपट्टे को संभालते हुए शत्वरी ने कहा। अपने में वह ऐसी मग्न थी कि अपनी बांहों को दुपट्टे से ढकना भी भूल गई थी।

'आप बड़ी भाग्यशाली हैं जो आचार्य जी आपको संगीत सिखा रहे हैं। पूरे राज्य में उनके जैसा संगीत का ज्ञानी कोई और नहीं है,' बैलों की लगाम को कुछ कसते हुए गाड़ीवान ने कहा।

'हां, वे मेरे पिता पंडित आदित्य शास्त्री के पुराने मित्र हैं। इसीलिए हमें संगीत सिखा रहे हैं। नहीं तो उनका शिष्य बनना भी इतना आसान नहीं है,' अपनी बांहों को दुपट्टे से ढकते हुए शत्वरी ने कुछ ऊपर चढ़ आई रेशमी चोली को नीचे सरकाया।

'शास्त्री जी का सम्मान तो पूरे गांव में है। उनके जैसा विद्वान और वेद-शास्त्रों का ज्ञाता मिलना भी कठिन ही है।'

गाड़ीवान के मुंह से अपने पिता की प्रशंसा सुनकर शत्वरी को अच्छा लगा। गर्व की सिंदूरी आभा उसके चेहरे पर दमक आई।

'गाड़ी वाले...' शत्वरी का संबोधन पूरा होने से पहले ही गाड़ीवान ने कहा, 'मेरा नाम गुंजन है।'

गुंजन सांवले रंग का ऊंचे कद का लगभग बीस वर्ष का युवक था। उसका शरीर इकहरा किंतु गठीला था। उसका लंबा चेहरा, जिसपर हलकी दाढ़ी उगी हुई थी, काफी आकर्षक था। कंधों तक आते काले बालों को उसने संवार कर पीछे की ओर बांधा हुआ था, जिससे उसका बड़ा और उभरा हुआ मस्तक पूरा दिखाई दे रहा था। उसने कमर पर सफेद रंग की धोती बांधी हुई थी और उसका एक भाग शरीर के उपरी हिस्से पर भी डाला हुआ था। गले में काले धागे की एक माला थी जिसमें चांदी का एक सिक्का पिरोया हुआ था। कानों में चांदी की छोटी बालियां पहनी हुई थीं।

'वाह! गुंजन! तुम्हारे तो नाम में ही संगीत है,' शत्वरी ने हंसते हुए कहा। फिर उसे अपना परिचय देते हुए कहा, 'मेरा नाम शत्वरी है, और यह है मेरी सहेली अदिति।'

फिर थोड़ी देर रुकते हुए शत्वरी ने पूछा, 'गुंजन तुम्हें संगीत आता है?'

'संगीत तो वेदों की परंपरा है। मैं ठहरा एक शूद्र। मैं भला कहां से संगीत सीखूंगा?' गुंजन के चेहरे पर मायूसी की एक हल्की परत उभर आई।

'संगीत वेदों की नहीं सांसों की परंपरा है। संगीत जानने के लिए वेदों का ज्ञान सहायक तो हो सकता है, परंतु आवश्यक नहीं है। संगीत तो कोयल की कूक और भंवरे के गुंजन में भी है।'

'आप ठीक ही कहती हैं। सरगम और राग-रागिनी का तो मुझे कोई ज्ञान नहीं पर दोस्तों के साथ बारामासी और फाग गाते-गाते थोड़ा बहुत गाना तो मैं भी सीख गया हूं। हमारे टोले के शीतला मंदिर के पुजारी बांसुरी बहुत अच्छी बजाते हैं। उन्होंने मुझे बांसुरी बजाना भी सिखाया है,' गुंजन ने अपनी कुछ रुचियां गिनाते हुए कहा। मायूसी की परत को हटाती एक मीठी मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई।

'अरे वाह, फिर तो तुम हमें कोई गीत सुनाओ। देखें तो सही तुम कैसा गाते हो। इस तरह रास्ता भी कट जाएगा,' अदिति ने शत्वरी और गुंजन के वार्तालाप में कूदते हुए कहा।

अदिति के इस आकस्मिक अनुरोध से गुंजन कुछ झेंप सा गया। उसने कुछ शरमाते हुए कहा, 'आप लोग तो आचार्य जी की शिष्या हैं। बहुत ही अच्छा संगीत जानती होंगी। मेरा गाना सुनकर तो आप हंसेंगी।'

'शरमाओ मत, गाना तो मन से गाया जाता है, और मन की वाणी पर भी कोई हंसता है!' शत्वरी ने गुंजन का साहस बढ़ाया।

गुंजन के होंठों पर एक मुस्कान उभर आई। उसे शत्वरी का इस आत्मीयता से बात करना अच्छा लगा।

'वैसे गाने में बुराई ही क्या है। शायद गाना सुन कर शत्वरी प्रभावित हो जाए,' गुंजन ने सोचा ।

गुंजन ने ऊंचे सुर में एक लंबी तान ली और फिर सावन के महीने में गाए जाने वाले एक सवनाही गीत को आरंभ किया। उसकी तान सुनकर ही शत्वरी और अदिति को आभास हो गया कि उसका स्वर मधुर था और सुरों पर उसकी पकड़ भी अच्छी थी। गीत की लय पर झूमता हुआ गुंजन उस गीत में ऐसा डूब गया जैसे मकरंद के रस में डूबा कोई भंवरा। शत्वरी भी अपने पैरों की थाप देकर उसके सुरों में अपने घुंघरुओं की झंकार मिलाने लगी। सावन की भीगी मादक हवा, खेतों की मिट्टी की सोंधी महक और उस पर सवनाही गीत की मधुर लय,

गुंजन के साथ-साथ शत्वरी और अदिति भी इस गीत की धारा में बह गए। गीत समाप्त होते-होते आचार्य जी का घर भी आ गया।

'वाह गुंजन! तुम तो बहुत अच्छा गाते हो। और तुम्हारा स्वर भी मधुर है। यदि तुम शास्त्रीय संगीत सीख लो तो बहुत बड़े गायक बन सकते हो।' शत्वरी के स्वर में आश्चर्य कम और प्रसन्नता अधिक थी।

'आप भी ठिठोली करती हैं, मुझ शूद्र को भला कौन शास्त्रीय संगीत सिखाएगा?' गुंजन ने अपनी विवशता दुहराई।

'मैं सिखाऊंगी तुम्हें शास्त्रीय संगीत, सीखोगे मुझसे?' शत्वरी ने कुछ आगे झुकते हुए कहा और फिर अपने रेशमी बालों में गुंथे मोगरे की सुगंध गुंजन की सांसों में महकाती गाड़ी से नीचे उतर आई। कुछ क्षणों तक गुंजन इसी मीठी गंध में डूबा रहा फिर अचानक उसका ध्यान शत्वरी के इन शब्दों से टूटा, 'सोच कर जवाब देना।'

गुंजन ने मुड़ कर देखा, शत्वरी अदिति के साथ आचार्य जी के घर की ओर बढ़ रही थी। गुंजन उसकी अल्हड़ चाल को देखता रहा, कुछ मंत्रमुग्ध सा। आज तक इतनी सुंदर युवती न तो उसके इतने समीप आई थी और न ही उससे इस आत्मीयता से बात की थी। गुंजन भीतर ही भीतर महक उठा। ठीक वैसे ही जैसे पहली बारिश की बूंदों से कच्ची मिट्टी महक उठती है।

'क्या शत्वरी मुझसे प्रभावित हो गई है? क्या वह मुझे चाहने लगी है?'

गुंजन के मन में तरंगें उठने लगीं। लेकिन फिर उसने अपने मन में उठती तरंगों को संभाला।

'क्या शूद्र होते हुए एक ब्राह्मण कन्या के प्रति ऐसे विचार रखना ठीक है? मां भी तो ब्राह्मण थी किंतु शूद्र पिता से प्रेम विवाह करने के कारण उन्हें अपने परिजनों से संबंध तोड़ने पड़े थे और उन्हें छोड़ कर इस गांव में आ बसना पड़ा था। एक शूद्र से एक ब्राह्मण कन्या का संबंध समाज को कभी स्वीकार्य न होगा। उचित यही होगा कि मन की उड़ान पर अंकुश लगाया जाए। शत्वरी का भला भी इसी में होगा। उसके प्रस्ताव को विनम्रता से अस्वीकार कर देना ही उचित होगा।'

दो

नील ने झुक कर नर्मदा के पावन जल को प्रणाम किया और घुटनों के बल बैठते हुए दोनों हथेलियों में थोड़ा-सा जल लेकर अपनी प्यास शांत करनी चाही। नर्मदा कुंड के शांत जल में उसे अपना प्रतिबिंब साफ दिख रहा था। दिन भर की थकान से कुम्हलाया चेहरा और उस पर उगती हल्की दाढ़ी, कंधों से नीचे लटकते रूखे बालों की आपस में उलझी लटें, माथे पर तनाव के चिह्न और आंखों में व्याकुलता। पिछले एक वर्ष के दुखद अनुभवों ने इक्कीस वर्ष के इस लंबे, सुडौल और आकर्षक युवक को, जिसे कोई भी मेकल पुत्री अपना यौवन सहज ही सौंपने को आतुर हो, इस बात का अनुमान भी न होने दिया कि इस तनाव और बेचैनी में वही आकर्षक छवि किस गति से मंद हो रही थी, आंखों की चमक फीकी पड़ रही थी, चेहरे का तेज बुझता सा लग रहा था, बाहें शिथिल हो रही थीं और पैरों की चाल अपनी लय खो रही थी।

नील ने हथेलियों को होंठों के करीब लाकर थोड़ा पानी गले से नीचे उतारा। होंठों से लेकर हृदय तक स्फूर्ति की एक लहर दौड़ गई। पानी की मिठास और ठंडक ने न सिर्फ उसकी प्यास बुझाई बल्कि मन में उठती बेचैनी की लपट को भी कुछ शांत किया ।

'काश ऐसी ठंडक और मिठास मेरे अनुभवों में भी घुली होती,' नील ने नर्मदा का आभार व्यक्त करते हुए सोचा।

नर्मदा कुंड से उठकर नील ने पूर्व की ओर चलना शुरू किया। अमरकंटक की सुरम्य घाटियां लगभग हर तरह के रंगों के फूलों की छोटी बड़ी झाड़ियों से लदी थीं। इन्हीं मोहक फूलों के इर्द-गिर्द इनसे भी कहीं अधिक सुंदर और सौम्य

तितलियां कुछ यूं मंडरा रही थीं मानो सूर्य की अंतिम किरण तक इन फूलों की महकती सांसों से उलझी रहें। इन्हीं झाड़ियों के बीच से उठते साल के ऊंचे वृक्ष पश्चिम में विंध्य की गोद में उतरते सूर्य का अंतिम अभिनंदन करने की उत्सुकता में खड़े थे। ऊंचे साल के वृक्षों से ईर्ष्या करते मध्यम ऊंचाई के आम के वृक्ष इस बात से अनभिज्ञ थे कि उनकी डालियों से लटकते आमों की मिठास से तो समस्त प्रकृति ईर्ष्या कर रही थी। इन्हीं वृक्षों में बने घोंसलों की ओर लौटते पक्षियों का कलरव इस सुरमई शाम के सप्तक को एक नई रागिनी दे रहा था।

प्रकृति के इस सुरम्य सान्निध्य में भी नील का मन कुछ उखड़ा हुआ ही था। उसने ठहर कर एक बार फिर चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाई। अमरकंटक मेकल राज्य का एक प्रमुख नगर था जिसे राजधानी भी कहा जा सकता था। मेकल की इन्हीं घाटियों में उसके जीवन के अब तक के इक्कीस वर्ष बीते थे। यहीं माई की बगिया में आम के पेड़ों पर झूले डाल कर उसका बचपन खेला था। यहीं मेकल की घाटियों में बसे घने जंगलों में अन्य निषाद किशोरों के साथ पशुओं का शिकार कर उसका लड़कपन बीता था। इन्हीं फूलों और फलों के सान्निध्य ने उसकी तरुणाई को पोषित कर उसे एक सुडौल युवक बना दिया था। नील के पिता मेकल के इस पहाड़ी कबीलाई राज्य के राजा और निषाद कबीले के प्रमुख थे। पिता की असामयिक मृत्यु के बाद यह दायित्व नील को सौंपा गया था।

'कितने मनोरम हैं ये पर्वत, ये फूलों से ढकी घाटियां, ये मचलती हुई नदियां!'

नील की आंखें एक बार फिर मेकल के सौंदर्य पर मुग्ध हो उठीं। एक ओर जहां विध्य के वक्ष को सहलाती नर्मदा उत्तर पश्चिम की ओर बह रही थी, वहीं सोनमुड़ा से एक लंबी छलांग लेकर सोन नदी उत्तर पूर्व में रिक्ष पर्वत की बांहों में समाने को आतुर थी। दूर दक्षिण में क्षितिज तक फैला दंडकारण्य मानो अब तक आर्यावर्त के वीरों और योद्धाओं को द्वंद्व के लिए ललकार रहा था। दक्षिण पूर्व में घने वनों से घिरी घाटियों से उतर कर मेकल की तराइयां दक्षिण कोसल के विशाल और शक्तिशाली राज्य की ओर बढ़ रहीं थीं। यह वही दक्षिण कोसल था जहां इक्ष्वाकु वंश और रघुकुल के सम्राट दशरथसुत राजा राम की माता कौशल्या का जन्म हुआ था। उन्हीं राजा राम के पुत्र कुश ने दक्षिण कोसल को उत्तर कोसल से अलग एक आत्मनिर्भर राज्य बनाया था। इन्हीं राजा राम और कुश के वंशजों ने दक्षिण कोसल में समृद्धि और शक्ति की नई परिभाषा रची थी। दक्षिण कोसल की राजधानी श्रीपुर के गौरव की चर्चा आर्यावर्त में चारों ओर होती थी। उसी दक्षिण कोसल पर आज यदुवंशियों का आधिपत्य था। इन्हीं यदुवंशियों ने आज मेकल

की तराई के उन गांवों पर अपना अधिकार किया हुआ था, जो कभी मेकल राज्य का हिस्सा होते थे। मेकल के युवक उनके बंधक थे। मेकल की युवतियां उनकी दासी।

'कैसा व्यवहार होता होगा उनके साथ? क्या उनसे पशुओं जैसा बर्ताव होता होगा? क्या बंदी बनाए गए हमारे सारे युवक अब भी स्वस्थ या जीवित होंगे? क्या हमारी युवतियों की लाज अब तक बच रही होगी?'

नील की मुट्ठियां भिंचने लगीं, बांहें अकड़ने लगीं और बगलों से बह कर पसीना कमर से लिपटी धोती को भिगोने लगा।

नील ने अपने आप को सहज करने के लिए एक गहरी सांस ली। गर्दन पर लपेटे सफेद कपड़े को उतार कर शरीर का पसीना पोंछा और उसे कंधे पर डालते हुए फिर से विचारों में डूबने-उतरने लगा।

'क्या समयचक्र उस युग में आ पहुंचा है जिसमें धर्म के अवसान की आशंका प्रकट की गई थी? क्या भारतवर्ष में सचमुच धर्म का पतन हो रहा है? क्या आर्यों की मर्यादा लुप्त हो रही है? क्या आर्यों की दृष्टि में निषादों का कोई सम्मान नहीं रह गया है? मेकल के घने जंगलों और दुर्गम घाटियों का कवच न होता तो राज्य का अधिकांश भाग आज कोसल नरेश के अधीन होता। क्या मेकल आने वाले दिनों में इसी नियति को प्राप्त होने वाला है? क्या राजा होने के नाते प्रजा की सुरक्षा करना मेरा दायित्व नहीं है? क्या अपनी प्रजा और अपने गांवों को यदुवंशियों की सत्ता से स्वतंत्र कराना मेरा कर्तव्य नहीं है? परंतु, क्या हममें कोसल नरेश से लोहा लेने का सामर्थ्य है? क्या हमारे पास यदुवंशियों की तरह प्रशिक्षित योद्धा हैं? क्या हमारा सैन्य प्रबंध ऐसा है जो कोसल की विशाल सेना का सामना कर सके?'

सूर्य पूरी तरह अस्त हो चुका था। पक्षियों का कलरव समाप्त हो चुका था और उसका स्थान कुछ कीट-पतंगों के गुंजन ने ले लिया था। तितलियां फूलों से विदा ले कर पत्तियों के झुरमुट में रात बिताने चली गई थीं। कहीं-कहीं झाड़ियों के बीच जुगनुओं की टिमटिमाहट दिखाई पड़ रही थी। दूर दक्षिण-पूर्व के जंगलों से पशुओं के स्वर आ रहे थे। नील ने लौटने का निश्चय किया। पश्चिम दिशा में हल्के डग भरते हुए वह घर की ओर लौट पड़ा।

तीन

कच्ची ईंटों से बने तीन कमरों के आचार्य जी के छोटे मकान में भीतर जाकर शत्वरी और अदिति ने बाईं ओर बने अध्ययन कक्ष में प्रवेश किया और दोनों हाथ जोड़ कर सामने की ओर थोड़ा झुकते हुए आचार्य जी का अभिवादन किया। आचार्य जी गोरे रंग और मंझोले कद के लगभग पचास वर्ष के अधेड़ थे। उनका शरीर दुबला था किंतु चेहरा काफी आकर्षक था। सिर के हल्के पके घुंघराले बाल पीछे कंधों पर लटके हुए थे। उन्होंने सफेद धोती पर सफेद अंगवस्त्र ओढ़ा हुआ था।

'यह मेरा बेटा है दामोदर,' अपनी बाईं ओर खड़े बाईस-तेईस वर्ष के लंबे और गोरे युवक का परिचय कराते हुए आचार्य जी ने कहा, 'आज ही श्रीपुर से शिक्षा पूरी करके लौटा है। संगीत में तो मैंने इसे बचपन में ही पारंगत कर दिया था। यह संगीत सीखने में तुम्हारी मदद करेगा।'

दामोदर ने दोनों हाथ जोड़कर शत्वरी और अदिति का अभिवादन किया और फिर एक दृष्टि शत्वरी के खिले हुए रूप पर डाली। शत्वरी का रूप उसके बालों में गुंथे मोगरे सा महक रहा था।

'आप शास्त्री जी की बेटी शत्वरी हैं न? बचपन में ही आपको देखकर लगता था कि बड़ी होकर आप बहुत सुंदर निकलने वाली हैं,' दामोदर के मुंह से सहसा निकल पड़ा।

पहली ही भेंट में दामोदर का इस तरह उसकी सुंदरता की प्रशंसा करना शत्वरी को कुछ अटपटा सा लगा।

'पहली ही भेंट में मक्खन लगा रहे हैं। बड़े रसिक जान पड़ते हैं श्रीमान!' शत्वरी ने सोचा। फिर उसने कहा, 'धन्यवाद, आपकी दृष्टि काफी पारखी है। ऐसी निपुणता तो लंबे अभ्यास से ही आती है।'

शत्वरी के इस उत्तर से दामोदर कुछ झेंप सा गया। इस बातचीत से आचार्य जी भी कुछ खिन्न दिखे। विषय बदलते हुए उन्होंने कहा, 'आज हम संगीत और नृत्य में प्रयुक्त होने वाले रसों पर चर्चा करेंगे। सब अपने-अपने स्थान पर बैठ जाएं।'

साफ धुली सफेद सूती चादर पर आई कुछ सलवटों को ठीक करते हुए वे स्वयं भी धरती पर बिछे रुई के एक छोटे से गद्दे पर बैठ गए। आचार्य जी के बैठते ही शत्वरी, अदिति और दामोदर भी सामने रखे एक बड़े गद्दे पर आचार्य जी की ओर मुंह करके बैठ गए। शत्वरी ने गौर किया कि दामोदर उसकी दाहिनी ओर उससे लगभग सट कर ही बैठा था। उसने अदिति को हल्के से कोहनी मारते हुए सरकने का संकेत किया और फिर अपनी बाईं ओर सरकते हुए दामोदर से थोड़ी दूरी बना ली।

'रस का अर्थ है 'सार' या 'सत्व',' आचार्य जी ने रस की परिभाषा देते हुए कहा, 'जिस प्रकार किसी फल या फूल का सत्व उसके रस में निचोड़ा जा सकता है उसी तरह जीवन का सार भी कुछ रसों में समाया होता है। जीवन को गति देनी वाली इच्छाएं और भावनाएं इन्हीं रसों में घुल कर बहती हैं। बिना रसों के जीवन निरर्थक है,' यह कहते हुए आचार्य जी ने छोटा सा विराम लिया।

'किंतु इसका संगीत से क्या संबंध है?' अदिति ने पूछा।

'चूंकि रसों का भावनाओं से संबंध है और संगीत भी भावनाओं में रमता है इसलिए रस और संगीत के बीच गहरा संबंध है। संगीत का जन्म तो तभी हो गया था जब ईश्वर के मन में सृष्टि की रचना करने का भाव जगा था। सृष्टि का जन्म ही नाद से हुआ है। सृष्टि में हर जगह संगीत है। अलग-अलग संगीत सृष्टि और जीवन के अलग-अलग भावों को दर्शाते हैं और साथ ही उन रसों को भी जिनसे ये भाव जुड़े हुए हैं। इसलिए एक संगीतकार और गायक को इन रसों का ज्ञान होना अनिवार्य है।' अब आचार्य जी रस की व्याख्या कर रहे थे—'रस आठ तरह के होते हैं। जिनमें प्रमुख है शृंगार रस। शृंगार का अर्थ है प्रेम और इसका स्थायी भाव है रति। सरल शब्दों में कहा जाए तो शृंगार का अर्थ है विपरीत यौन के साथ रतिपूर्ण परिवेश में प्रेम का आनंद लेना। किंतु इस परिभाषा से तो ऐसा लगता है कि प्रेम को रतिक्रिया या काम की सीमाओं में बांध दिया गया हो, जबकि प्रेम का विस्तार तो इन सबसे कहीं अधिक है। शृंगार या प्रेम को तब तक अच्छी तरह नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम यह न समझें कि यह सृष्टि ब्रह्म की लीला है, ब्रह्म के नर और नारी स्वरूप, पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति की लीला। सृष्टि का जन्म ब्रह्म के इन विपरीत यौन स्वरूपों, शिव और शक्ति द्वारा प्रेम या शृंगार का आनंद लेने के लिए ही हुआ है। सृष्टि में शिव और शक्ति हर जगह

मौजूद हैं, शिव चेतना हैं तो शक्ति उर्जा। शिव और शक्ति के मिलन से ही सृजन होता है और शिव और शक्ति के मिलन से ही प्रजनन। प्रेम में सबसे अधिक आनंद है। जब एक पुरुष और स्त्री प्रेम में डूबकर एकरूप और एकात्म हो जाते हैं तो वे अपने भीतर प्रेम के एक ऐसे ब्रह्मांड की रचना करते हैं जिसमें वे स्वयं ही शिव और शक्ति का स्वरूप बन जाते हैं। उनका प्रेम संबंध, उनकी प्रेम-क्रीड़ा, उनकी प्रणय-लीला ब्रह्म के प्रति संपूर्ण समर्पण का अभ्यास बन जाती है।'

आचार्य जी की व्याख्या के दौरान शल्वरी को अहसास हुआ कि दामोदर की आंखें चोरी-छुपे उसे ही देख रही थीं। 'कहीं इस व्याख्यान से प्रेरित होकर श्रीमान हमारे रूप और शृंगार में तो रस नहीं लेने लगे हैं।'

शल्वरी ने कंधों पर ऊपर उठ आए दुपट्टे को कुछ नीचे सरकाया और बाईं ओर सरकते हुए दामोदर से कुछ और दूरी बना ली।

'किंतु शृंगार का जो अर्थ हमें पता है वह तो सौंदर्य को निखारना है, रूप को सजाना और संवारना है,' अदिति ने कहा।

'सच है। जो सुंदर है वही तो प्रिय है। प्रेम और सौंदर्य का आपस में गहरा संबंध है। यदि जो सुंदर है वह प्रिय लगता है तो जो प्रिय है वही सुंदर भी लगता है। मां को अपना बेटा ही सबसे सुंदर लगता है। पिता को अपनी बेटी सा रूपवान कोई और नहीं लगता,' आचार्य जी समझाया।

इस बीच आचार्य जी को आभास होने लगा था कि दामोदर शल्वरी में कुछ अधिक ही रुचि ले रहा था और शल्वरी को इससे असुविधा हो रही थी। उन्होंने सोचा कि अब यहां विराम ले लेना ही अच्छा है। अगली कक्षा से पहले दामोदर को सचेत करना होगा। उन्होंने शल्वरी और अदिति की ओर देखते हुए कहा, 'अच्छा अब हम यहां विराम लेते हैं। शृंगार का संगीत में कैसे प्रयोग किया जाए, कैसे संगीत को और निखारा जाए और उसे कैसे अधिक प्रिय बनाया जाए इस पर हम कल चर्चा करेंगे।'

शल्वरी और अदिति ने उठते हुए दोनों हाथ जोड़ कर आचार्य जी को प्रणाम किया और फिर घर से बाहर निकल आईं। दामोदर ने भी उनके साथ बाहर आते हुए शल्वरी से कहा, 'श्रीपुर से मैंने एक नई घोड़ागाड़ी ली है, यदि आप बुरा न मानें तो मैं आपको घर तक छोड़ दूं।'

शल्वरी ने सोचा, 'अब घोड़ागाड़ी का ठाठ दिखाकर प्रभाव जमाने की कोशिश हो रही है!'

'आज तो हमारे पास गाड़ी है। आपकी घोड़ागाड़ी की सवारी किसी और दिन कर लेंगे,' शल्वरी ने मुस्कान में सनी स्पष्टता से कहा।

दामोदर देखने में काफी आकर्षक था। लंबा कद, गोरा रंग, चौड़े कंधे, तीखे नैन-नक्श। वह अपने रूप से ही किसी युवती को अपनी ओर आकर्षित कर सकता था।

'देखने में तो सुंदर हैं। यौवन भी भरपूर चढ़ आया है। मगर लड़कपन अब तक गया नहीं है। पहले इन्हें अच्छी तरह समझ लिया जाए फिर देखेंगे कि मित्रता के योग्य हैं या नहीं,' शत्वरी ने सोचा।

बैलगाड़ी पर अदिति के साथ बैठते हुए शत्वरी ने गुंजन से पूछा, 'तो क्या निर्णय किया है तुमने? सीखोगे मुझसे संगीत?'

'किंतु आप तो ब्राह्मण हैं और मैं एक शूद्र। मेरा आपसे शास्त्रीय संगीत सीखना समाज को स्वीकार न होगा,' गुंजन ने सकुचाते हुए कहा।

'यह वही आर्य समाज है जहां वाल्मीकि और वेदव्यास जैसे शूद्र भी महा ऋषि हुए हैं। तुम इतना डरते क्यों हो समाज से?'

'पहले की बात और थी, किंतु अब समाज बदल गया है। वर्णव्यवस्था बदल गई है। मुझे नहीं लगता समाज कभी इसे स्वीकारेगा।'

'समाज तो बदलता ही रहता है। यदि आज की वर्णव्यवस्था अनुचित है तो इसे भी बदलना होगा। तुम समाज की चिंता छोड़ो और यह बताओ तुम्हें मुझसे संगीत सीखना स्वीकार है या नहीं?' शत्वरी ने यूं कहा मानो उसे समाज की बहुत अधिक परवाह न हो। गांव के इतने बड़े शास्त्री की बेटी थी। धर्म और न्याय को उससे बेहतर भला कोई और क्या समझ सकता था?

'चलो समाज की चिंता छोड़ भी दें, पर आपके घर वाले? आपके पिता, शास्त्री जी? क्या उन्हें यह स्वीकार होगा?' गुंजन अब भी आश्वस्त न था।

'मेरे पिता बहुत उदार विचारों वाले हैं। विद्वान पंडित हैं और शास्त्रों का सही ज्ञान है उन्हें। उन पाखंडी पंडितों की तरह नहीं जो शास्त्रों की व्याख्या अपनी सुविधा के अनुसार करते हैं।' शत्वरी के स्वर में एक बार फिर अपने पिता के प्रति अभिमान था।

'वैसे संगीत सीखने में बुराई भी क्या है। फिर शत्वरी तो मेरी गुरु होगी और गुरु के लिए तो मन में आदर की भावना होनी चाहिए। मैं व्यर्थ ही भावनाओं में बह रहा था,' गुंजन ने सोचा।

'यदि ऐसा है तो मुझे स्वीकार है,' गुंजन ने खुश होते हुए स्वीकृति दे दी।

'तो फिर ठीक, आज से मैं तुम्हारी गुरु और तुम मेरे शिष्य। याद रखना गुरु दक्षिणा देनी होगी।' शत्वरी की बड़ी-बड़ी आंखें शरारत से चमक उठीं।

'और हर दिन झुक कर पैर भी छूने होंगे,' अदिति ने भी एक शरारती चुटकी ली। शत्वरी ने उसे तिरछी आंखों से देखा और फिर वह हंस पड़ी।

चार

नील का घर नर्मदा कुंड से कुछ दूरी पर पश्चिम की ओर था। उसका घर पश्चिम-पूर्व दिशा में बने मुख्य नगर पथ से लगभग पचास पग की दूरी पर दक्षिणी किनारे पर था। मिट्टी की पक्की ईंटों से बनी दीवारें किनारों पर लकड़ी के खंबों पर जाकर जुड़ी थीं। बांस से बनी छतें दीवारों की ओर ढलकी हुई थीं, जिन्हें नीचे से लकड़ी की धरणियों का सहारा दिया गया था, और ऊपर से घास और सरकंडे से ढंका गया था। साल की बलिष्ठ लकड़ी से बना दो पल्लों का चौड़ा मुख्य द्वार उपरी छोर पर तोरण का आकार लिए था। द्वार के दोनों पल्लों पर बड़ी सुंदर नक्काशी की गई थी।

रात का तीसरा पहर ढल चुका था। सुबह होने में अभी समय था। नमी में भीगी हवा के पांव भारी थे। चंद्रमा की चढ़ती कलाएं यौवन की ओर बढ़ रही थीं।

नींद और हल्की थकान से बोझिल आंखों से द्वारपालों ने धनंजय का झुक कर स्वागत किया। धनंजय ने मुस्कुरा कर उनका अभिवादन स्वीकार किया। लंबे कद और चौड़ी काठी के इन द्वारपालों के हाथों में लोहे के लंबे भाले थे और कमर पर दाहिनी ओर धोती के ऊपर बंधी चमड़े की पेटी से लटकती लकड़ी की नक्काशीदार म्यानों में लंबी तलवारें थीं। धनंजय के आते ही एक द्वारपाल ने द्वार का बायां पल्ला खोल दिया। जिस तरह धनंजय को सम्मानपूर्वक भीतर जाने दिया गया उससे धनंजय की प्रतिष्ठा और नील से उसके निकट संबंध का आभास होता था।

धनंजय ने भीतर जाते हुए दाहिनी ओर बने एक बड़े से शयन कक्ष के द्वार पर हल्की सी थपकी दी। कुछ देर प्रतीक्षा करने पर भी जब भीतर से कोई उत्तर न आया तो बलपूर्वक थपथपाने लगा। किंतु अब भी भीतर से कोई उत्तर न मिला।

'लगता है नील गहरी नींद में है,' धनंजय ने सोचा। किंतु उसे उठाना भी आवश्यक था। सूर्यदेव की पूजा का उपलक्ष्य था। सारा नगर एकत्र होने वाला था। धनंजय ने द्वार कुछ और तीव्रता से खटखटाया। इतनी तीव्र ध्वनि किसी भी साधारण मनुष्य की नींद तोड़ने के लिए पर्याप्त थी। नील ने द्वार खोला।

'अब ऐसी भी क्या समस्या है इतनी सुबह?' आंखें मलते हुए उसने खिन्नता से पूछा। उसकी आंखों से साफ लग रहा था कि रात उसे ठीक से नींद नहीं आई थी।

'यही तो मैं आप से जानना चाहता हूं राजन, ऐसी भी क्या समस्या है?'

'अजीब हो तुम भी। इतनी सुबह तुमने मेरी नींद में बाधा डाली और मुझ से ही पूछ रहे हो समस्या क्या है?' नील ने झुंझलाते हुए कहा।

'राजन, अधिक समस्या में तो आप ही लग रहे हैं। यूं आपका अनमना रहना, रातों को देर से सोना, आवश्यक बातों को भूल जाना। सारे लक्षण किसी के प्यार में पड़ जाने के हैं,' धनंजय ने चुटकी ली।

'यह तुम्हारा भ्रम है धनंजय,' नील ने धनंजय की शरारत को टालना चाहा।

'अच्छा? पर ऐसे हाव-भाव तो अक्सर प्रेमरोग लग जाने पर दिखते हैं,' धनंजय के चेहरे पर अब भी वही शरारती मुस्कान थी।

'दिखते होंगे। परंतु घृणा, क्रोध और द्वेष की भावनाएं प्रेम की भावनाओं से कहीं अधिक गहरी होती हैं।'

'हूं...!' परंतु घृणा तो सांसों में विष बनकर घुलती है?'

'जिन्हें विष पीने की कला आती है वे विष से भी औषधि का काम ले लेते हैं,' नील ने थोड़ा संयत होने का प्रयास करते हुए कहा, 'चलो छोड़ो ये सब और अपनी समस्या बताओ, जो दिन निकलते ही तुम्हें यहां ले आई।'

'अच्छा तो अब यह भी याद दिलाना पड़ेगा? आज सूर्यदेव की पूजा है।' धनंजय ने कुछ यूं कहा जैसे कोई बहुत बड़ा रहस्य खोला हो।

'ओह! मैं तो सचमुच भूल गया था। हे सूर्यदेव, यह कैसा पाप हुआ मुझसे। तुम भीतर चल कर बैठो मैं तैयार हो कर आता हूं,' यह कहते हुए नील तीव्र गति से भीतर की ओर दौड़ा।

नील के तैयार होने तक धनंजय ने सामने की ओर बने मुख्यकक्ष में बैठकर प्रतीक्षा करना ठीक समझा। कक्ष के दाहिने किनारे पर रखी लकड़ी की एक चौड़ी आसंदी पर बैठते हुए उसने एक दृष्टि सामने की दीवार पर डाली। दीवार पर लटकी मृगछाल पर सजाए बारहसिंगा के सींगों को निहारते हुए आराम की मुद्रा में पीछे की ओर सिर झुकाया और फिर धीरे से अपनी आंखें बंद कर लीं। वह उन दिनों की स्मृतियों में खो गया जब वह नील के साथ दूर घने वनों में आंखेट के लिए जाया करता था।

पांच

'सुना है तुम गुंजन को संगीत सिखाने वाली हो,' शास्त्री जी के स्वर और मुद्रा में चिंता की स्पष्ट झलक थी।

'जी हां, आपको कोई आपत्ति तो नहीं? कहीं आप यह सोचकर चिंतित तो नहीं हैं कि वह एक पुरुष है और वो भी शूद्र?' शत्वरी ने थोड़े आश्चर्य से पूछा। शास्त्री जी जैसे उदार व्यक्ति के चेहरे पर चिंता की रेखाएं उसे विचित्र सी लग रही थीं।

'नहीं ऐसा नहीं है। कला और विद्या तो बांटने के लिए ही होती है। मुझे प्रसन्नता है कि तुम अपनी कला किसी के साथ बांट रही हो,' शास्त्री जी ने सधे हुए स्वर में कहा, 'मेरा तो केवल इतना सुझाव है कि किसी को विद्या देने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि वह उस विद्या के योग्य है, अन्यथा विद्या का अपमान होता है।'

'मैंने उसे सुना है। बहुत अच्छा गाता है और उसका स्वर भी मधुर है,' शत्वरी ने शास्त्री जी को भरोसा दिलाना चाहा।

'यदि तुम उसे योग्य समझती हो तो ठीक है,' शत्वरी की बात से वे कुछ आश्वस्त लगे। परंतु एक छोटे से विराम के बाद उन्होंने कुछ सोचते हुए फिर से कहा, 'एक बात और...'

इससे पहले कि वे अपना वाक्य पूरा कर पाते शत्वरी ने पूछा, 'आप कुछ चिंतित लगते हैं। क्या आप मेरे इस निर्णय से प्रसन्न नहीं हैं?'

'ऐसा नहीं है,' शास्त्री जी ने गंभीर स्वर में कहा, 'किंतु गुरु और शिष्य का संबंध बहुत पवित्र होता है, उतना ही पवित्र जितना कि पिता और पुत्री का,

मां और बेटे का। इस संबंध की पवित्रता और मर्यादा का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। क्या तुम मुझे वचन दे सकती हो कि तुम इस संबंध की मर्यादा का ध्यान रखोगी?'

'क्या आपको अपनी बेटी पर विश्वास नहीं है?'

'विश्वास है तभी तो वचन मांग रहा हूं। जो वचन पूरा न कर सके, उससे वचन लेना तो वचन का अपमान ही है।'

'मैं आपको वचन देती हूं कि मैं गुरु और शिष्य के संबंध की मर्यादा कभी नहीं तोडूंगी।'

'मुझे तुमसे यही आशा थी,' शास्त्री जी के होंठों पर गर्व की मुस्कान बिखर गई।

पंडित आदित्य शास्त्री का व्यक्तित्व आकर्षक होने के साथ-साथ प्रभावी भी था। लंबा कद, चौड़ी छाती, गोरा रंग और ऐसा ओजस्वी चेहरा जो सिद्ध योगियों में भी दुर्लभ हो। उभरे हुए चौड़े माथे पर तेज ऐसा जैसे कि गर्मी की दुपहरी में दमकता सूर्य। वे शास्त्रों के बड़े ज्ञाता माने जाते थे इसीलिए उन्हें शास्त्री की उपाधि मिली थी। श्रुति और स्मृति, दोनों पर तो उनका पूरा अधिकार था ही साथ ही राज्य की अन्य जनजातियों में प्रचलित अनेक धार्मिक रीतियों और परंपराओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। शास्त्री जी उदार विचारों वाले थे, लेकिन फिर भी उनका मानना था कि समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए वर्ण-व्यवस्था आवश्यक है। किंतु वे विभिन्न वर्णों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव का समर्थन नहीं करते थे। वे परंपरावादी अवश्य थे किंतु उन रूढ़ियों के विरुद्ध भी थे जो प्रासंगिक नहीं रही थीं या जिनका उनकी दृष्टि में कोई औचित्य न था। उनका गांव में ही नहीं बल्कि गांव के बाहर भी बड़ा सम्मान था। आस-पास के अनेक गांवों से कई विद्वान, शास्त्री, आचार्य, प्रधान, समाज प्रमुख उनसे मार्गदर्शन लेने आते थे। उनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी। विद्या दान कर या हवन-अनुष्ठान कर के जो भी दान-दक्षिणा उन्हें मिल जाती उसी से उनका घर चलता। शायद यही कारण था कि वे सदैव अपनी प्रतिष्ठा के प्रति सजग रहते थे। उदार विचारों के कारण उन्होंने गुंजन को शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देने की अनुमति शत्वरी को तो दे दी, किंतु उन्हें यह चिंता अवश्य थी कि यह संबंध कहीं कोई ऐसा रूप न ले ले जो किसी विवाद का विषय बन जाए। शत्वरी के वचन से वे कुछ निश्चिंत हुए थे।

छह

'उठो मित्र, मेरी नींद में बाधा डालकर स्वयं आराम से सो रहे हो,' नील ने धनंजय के कंधे पर हल्के से अपना दाहिना हाथ रखते हुए कहा। नील के कहने के ढंग से लग रहा था कि उसने अपने आप को संयत कर अपने चित्त को शांत कर लिया था।

'क्षमा करें राजन, प्रतीक्षा के पल परिश्रम से भी अधिक थकान देने वाले होते हैं।' धनंजय ने हल्की नींद से उठते हुए एक छोटी सी अंगड़ाई ली।

'हां सारा दोष मेरा ही है। मुझे ही संवरने में स्त्रियों से भी अधिक समय लगता है,' नील ने एक बार फिर दिखाना चाहा कि उसकी मनोदशा अब संयत थी, 'और, तुम मुझे बार-बार राजन क्यों कहते हो? तुम मेरे बचपन के मित्र हो, और मुझे नील कहकर ही बुलाते आए हो।'

'वह समय और था, पर अब आप हमारे समाज के मुखिया हैं और हमारे राज्य के राजा।'

'पदवी मिलने से संबंध तो नहीं बदल जाते। अच्छा होगा यदि तुम मुझे नील कह कर ही बुलाओ।' नील के स्वर में आदेश कम और आग्रह अधिक था।

'जो आज्ञा राजन,' धनंजय ने आंखें झुकाते हुए होंठों पर एक शरारती मुस्कान लपेटी।

नील ने उसे तिरछी आंखों से देखा और फिर उसके होंठों पर भी एक स्वाभाविक मुस्कान तैर गई।

नील ने सूर्यदेव की वार्षिक पूजा के अवसर के लिए विशेष शृंगार किया था। काले किनारों वाली सफेद धोती, पैरों में चमड़े के काले नुकीले जूते, चौड़े

वक्ष को ढकता काले हिरन की खाल का अंगवस्त्र और सिर पर सफेद रंग की तुर्रेदार तिरछी पगड़ी। काले अंगवस्त्र की पृष्ठभूमि में चमकती चांदी की सफेद मोतियों जड़ी माला और दोनों बांहों की मांसपेशियों को उभारते चांदी के ही नक्काशीदार बाजूबंद। पिछली रात जिस व्यक्तित्व पर अवसाद की बदली छाई थी आज उसी व्यक्तित्व से हौसलों की कुछ किरणें फूट पड़ती दिख रही थीं।

आकाश पर हल्की सी लालिमा उभरने लगी थी। पक्षी अपने घोंसलों से निकल कर दिन को एक नई शुरुआत देने चल पड़े थे। पत्तियों के झुरमुटों से बाहर आकर तितलियां फिर से फूलों पर मंडराने लगी थीं। नील और धनंजय की घोड़ागाड़ी पूर्व दिशा की ओर बढ़ रही थी। नगर को दो भागों में बांटता मिट्टी, रेत और पत्थर के छोटे टुकड़ों से बना यह मुख्यमार्ग लगभग तीस फुट चौड़ा था। अमरकंटक किसी बड़े राज्य की राजधानी की तरह योजनाबद्ध रूप से बसाया गया नगर नहीं था। इसके बनाने में संभवतः वास्तुशास्त्र या शिल्पशास्त्र के निर्देशों का उपयोग नहीं हुआ था। नगर के अधिकांश घर झोपड़ीनुमा मकान थे। इन्हीं झोपड़ियों के साथ-साथ ही दो तलों के कुछ पक्के मकान भी थे, जो यह दर्शा रहे थे कि समाज किन्हीं विशेष वर्गों में बंटा हुआ नहीं था और विभिन्न वर्गों के लोग अलग-अलग नहीं रहते थे।

घोड़ागाड़ी नर्मदा कुंड के समीप आकर रुकी। नर्मदा कुंड के किनारे सूर्यदेव की पूजा के लिए एकत्र बड़े जनसमुदाय को देख नील को गर्व महसूस हुआ। उसने एक दृष्टि सामने चौड़े मैदान पर डाली और पूजा के लिए किए गए प्रबंधों का आकलन किया। उसे प्रसन्नता हुई कि निषाद संस्कृति के मूल्यों के अनुरूप ही पूजा के प्रबंध सिर्फ किसी धार्मिक अनुष्ठान को संपन्न करने के लिए ही नहीं बल्कि जीवन और प्रकृति के मनोहर रूप का खुलकर आनंद लेने के लिए एक उत्सव के रूप में किए गए थे। नर्मदा कुंड के किनारे एक बड़े मैदान में उत्सव के सारे प्रबंध किए गए थे। मैदान के एक ओर मिट्टी से बनी सूर्यदेव की एक बड़ी प्रतिमा लकड़ी के विशाल रथ पर आरूढ़ थी। सामने मैदान के एक बड़े गोलाकार भाग को मिट्टी से लीप कर समतल किया गया था, जिसमें प्रवेश के लिए दस फुट की जगह छोड़ कर शेष भाग को रस्सी से घेरा गया था। रस्सी के घेरे के बाहर एक ओर कुछ आसंदियां रखी हुई थीं जो संभवतः कुछ विशेष लोगों के बैठने के लिए थीं। बाकी की भीड़ रस्सी के घेरे के बाहर चारों ओर इकट्ठा थी। नील के साथ धनंजय और कुछ अन्य व्यक्तियों ने आकर पहले सूर्यदेव की प्रतिमा को प्रणाम किया। फिर सामने

रखे हुए धनुषों को उठाकर उनपर बाण चढ़ाए और आकाश में सूर्य की दिशा में छोड़ दिए। आशय यह था कि शक्ति और उर्जा देने वाले सूर्यदेव को उसी शक्ति और उर्जा का एक भाग भक्तिस्वरूप अर्पित किया जा रहा था। ऐसा करते ही नील और उसके साथियों के साथ सारी भीड़ ने 'जय सूर्यदेव' का घोष करते हुए सूर्य को फिर नमन किया। इसके बाद नील और उसके साथी उन आसंदियों पर बैठ गए। अब समय उत्सव प्रारंभ करने का था।

विशिष्ट प्रकार का शृंगार किए युवकों और युवतियों की एक टोली मैदान में आई। कुछ युवकों ने अपनी गर्दन में ढोल जैसा वाद्य लटकाया हुआ था जिसे मादल या मर्दल कहा जाता था। कुछ युवक-युवतियों के हाथों में मंजीरे, करताल और चिमटे भी थे जो मर्दल से निकलती ताल में खनक मिलाने के लिए थे। मर्दल की ताल से जैसे ही अन्य वाद्यों की खनक मिली वैसे ही नर्तक किसी लोक-नृत्य की भंगिमाओं में थिरक उठे। वादकों और नर्तकों का तालमेल संगीत और नृत्य का एक अद्‌भुत समागम पेश कर रहा था। नर्तकों के पैरों की गति, हाथों की मुद्राएं और चेहरों की भंगिमाएं संगीत की ताल से कुछ यूं मेल खा रही थीं जैसे किसी बांसुरी पर थिरकती उंगलियां वादक की सांसों से मेल खाती हैं। नील और धनंजय के साथ ही सारा जनसमुदाय नृत्य और संगीत के इस भव्य प्रदर्शन में डूब गया।

उत्सव अपने पूरे यौवन पर था, तभी घोड़ों पर सवार दो सैनिक भीड़ को चीरते हुए आए। दोनों के चेहरों पर भय, विस्मय और घबराहट के मिलेजुले भाव थे।

'क्या हुआ, कोई संकट?' नील ने चौंकते हुए पूछा।

'राजन दक्षिण-पूर्व के सैनिक शिविर पर कोसल की एक सैनिक टुकड़ी ने हमला कर दिया है,' एक सैनिक ने हांफते हुए कहा।

'ये असुरों के दूत यहां तक आ पहुंचे,' नील की मुट्ठियां भिंच गईं और चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। 'इन यदुवंशियों ने युद्धनीति ने सारे नियम बिसरा दिए हैं। इन्हें पता था कि आज हम सूर्यदेव की पूजा में व्यस्त होंगे। इस उत्सव और आनंद के अवसर पर ही उन्हें ये घृणित काम करना था?'

'हां राजन हम इस हमले के लिए तैयार नहीं थे। हमारे कुछ सैनिक तो पहले ही मारे गए हैं और बाकी भी अपना मनोबल खो रहे हैं,' एक अन्य सैनिक ने निराश स्वर में कहा।

'वीरों के लिए सम्मान की भाषा का प्रयोग करो सैनिक। राज्य की रक्षा में अपने प्राण देने वाले मरते नहीं, वीरगति को प्राप्त होते हैं।' नील का स्वर क्रोध से भर उठा।

'क्षमा राजन,' सैनिक ने सिर झुकाते हुए कहा। उसे आभास था कि नील के राजा बनने के बाद से सेना में काफी कुछ बदल रहा था। ये धर्म, मर्यादा और नीति की बातें, ये वीरगति का दर्शन, ये सब नए विचार नील के ही थे।

'हमें यदुवंशियों की इस कुटिलता का उत्तर देना ही होगा, साहस और चतुराई दोनों के साथ,' नील ने जोश में आते हुए कहा, 'मित्रो! आप में से जो भी युद्ध कौशल में प्रशिक्षित हों, अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर मेरे साथ आएं।'

फिर उसने रंग में भंग पड़ने से विस्मित भीड़ से कहा, 'आप लोग अपना उत्सव जारी रखें। किसी को ये आभास भी न होने दें कि यदुवंशियों के हमले से इस पवित्र उत्सव पर कोई असर आया है। हमले का जवाब देने के लिए हम सैनिक हैं। हम सब अपना-अपना काम करें। सैनिकों का काम है लड़ना और जनता की रक्षा करना। जनता का काम है समाज और सभ्यता की गति को बनाए रखना।'

लगभग दो सौ हथियारबंद युवकों की टोली घोड़ों पर सवार होकर नील के साथ चलने को तैयार हो गई, जिसमें धनंजय भी शामिल था। नील को आभास था कि यह टोली कोसल की सैनिक टुकड़ी का सामना करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उसने एक सैनिक से कहा, 'हम सब दक्षिण-पूर्व के उस शिविर की ओर बढ़ते हैं जहां हमला हुआ है, तब तक तुम उत्तर-पूर्व के शिविर में जाकर वीरों को दक्षिण की ओर बढ़ने के लिए कहो!' इतना कह कर वह एक घोड़े पर सवार हुआ और बाकी के सैनिकों का नेतृत्व करते हुए दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ने लगा।

कुछ आगे जाकर नील ने अपना घोड़ा रोका और बाकी सैनिकों से कहा, 'हमें इस लड़ाई में चतुराई से काम लेना होगा। हमारे पास पर्याप्त संख्या में सैनिक नहीं हैं। मेरी एक योजना है कि हम दो टुकड़ियों में बंट जाएं। एक टुकड़ी शिविर के अन्य सैनिकों को साथ ले कोसल के सैनिकों पर उत्तर दिशा से वार करे। कुछ देर लड़ाई करने के बाद यह टुकड़ी पीछे हटने लगे। कोसल के सैनिकों को लगेगा कि हम मैदान से भाग रहे हैं और वे हमारा पीछा करेंगे। हम उनसे अपना पीछा कराते हुए उन्हें उत्तर दिशा में घने जंगलों की ओर ले जाएं। जैसे ही हम घने जंगलों के कुछ भीतर पहुंचें हमारे सैनिक जंगलों में फैल जाएं। इससे कोसल के सैनिक बौखलाएंगे और अव्यवस्थित होंगे। तब तक हमारी दूसरी टुकड़ी कोसल के सैनिकों पर दक्षिण से धावा बोल देगी। वे इस वार के लिए तैयार नहीं होंगे और उनकी बौखलाहट और बढ़ेगी। कोसल के सैनिकों को हमारे वनों के मार्ग और दिशा का कोई ज्ञान नहीं है। हम उन्हें इन घने वनों में फंसा कर उनपर

छुप-छुप कर वार करेंगे। तब तक शायद हमारी उत्तर-पूर्व की सेना की टुकड़ी भी आ पहुंचे। इस प्रकार हम उन्हें आसानी से हरा सकते हैं।'

मगर नील की इस योजना से धनंजय को कुछ बेचैनी हुई। उसके चेहरे पर असहमति के भाव उभरे। 'किंतु राजन आप तो धर्म और युद्धनीति की बातें करते हैं,' नील की योजना से असहमति जताते हुए धनंजय ने कहा, 'किंतु क्या पीछे से वार करना युद्ध नीति के अनुरूप होगा?'

'धनंजय, पहला वार हमने नहीं किया है। जब शत्रु ही कुटिलता और धूर्तता से वार करे तो हमें भी अपने बचाव में चतुराई से काम लेना ही पड़ेगा।' नील ने अपनी रणनीति का बचाव किया।

सैनिकों को पहली बार आभास हुआ कि नील केवल कोरा दर्शन बघारने वाला दार्शनिक राजा ही नहीं था बल्कि उसके निर्णयों में व्यावहारिकता भी थी। धनंजय के चेहरे से भी असहमति के भाव उतर गए।

योजना के अनुसार नील की सेना दो टुकड़ियों में बंट गई। एक टुकड़ी का नेतृत्व धनंजय कर रहा था और दूसरी का नील। सभी सैनिक अपने घोड़ों को सरपट दौड़ा रहे थे। उन्हें जल्द से जल्द कोसल की सेना का सामना करते मेकल के सैनिकों का साथ देने शिविर पर पहुंचाना था। शिविर के पास पहुंचते ही एक टुकड़ी, जिसका नेतृत्व धनंजय कर रहा था, उत्तर की ओर बढ़ी जबकि नील के नेतृत्व वाली टुकड़ी दाईं ओर से घूमते हुए दक्षिण में पेड़ों के पीछे जा कर छुप गई। धनंजय की टुकड़ी 'जय सूर्यदेव', 'जय मेकल' के नारे लगाते हुए शिविर के साथ वाले मैदान में उतरी जहां कोसल की बड़ी सेना से लड़ते हुए मेकल के सैनिकों का मनोबल टूट रहा था। अपने साथियों को आते देख मेकल के कुछ सैनिकों का मनोबल फिर से लौटने लगा। उनके चेहरों के भाव और शरीर की भाषा बताने लगी कि उनमें कुछ उम्मीदें जागने लगी थीं। तलवारों पर उनकी पकड़ कड़ी हो गई। भुजदंड फड़कने लगे।

धनंजय ने तीव्रता से आगे बढ़ते हुए कोसल के एक सैनिक की बगल में पहुंचकर उसके दाएं कंधे पर तलवार से वार किया। कोसल के सैनिक ने बौखलाकर अपनी दाईं ओर देखा। ऐसा करते ही उसकी दृष्टि अपने साथ पहले से लड़ते हुए मेकल के सैनिक से हटी। इसका फायदा उठाते हुए मेकल के सैनिक ने बाईं ओर से उसकी छाती पर वार किया। इस वार से कोसल के सैनिक का संतुलन खो गया और वह घोड़े से नीचे गिर पड़ा। उसके नीचे गिरते ही मेकल के एक अन्य सैनिक ने अपना भाला उसकी छाती में उतार दिया। स्पष्ट था यहां युद्धनीति का

कोई पालन नहीं हो रहा था।

धनंजय में एक अविश्वसनीय फुर्ती दिखाई दे रही थी। वह तीव्रता से मैदान में अपना घोड़ा दौड़ा रहा था। किसी भी सैनिक का सीधा सामना करने की बजाए वह उनपर बगल से वार कर उन्हें घायल करने में अधिक रुचि ले रहा था। बस कुछ देर वह यूं ही कोसल के सैनिकों को घायल करता और थकाता रहा। कोसल के सैनिक धनंजय की इस युद्धशैली से थोड़े विस्मित और अचंभित थे लेकिन अब भी वे सामने से वार करने की नीति ही अपना रहे थे। थोड़ी ही देर में कोसल के एक सैनिक ने धनंजय का रास्ता रोकते हुए उसके आगे अपना घोड़ा अड़ा दिया और उसे सीधे द्वंद्व के लिए ललकारा। धनंजय को आशंका थी कि ऐसा कुछ होने वाला ही था। वह इसके लिए पूरी तरह तैयार था। धनंजय ने उस पर बाईं ओर तलवार से प्रहार किया जिसे कोसल के सैनिक ने कुशलता से रोका और एक पलट वार धनंजय के दाए कंधे को निशाना बनाकर किया। धनंजय ने तलवार उठा कर उसका यह वार रोका मगर साथ ही आंखों ही आंखों में अपने साथियों को कुछ संकेत किया। मेकल के सैनिकों को समझ आ गया कि यह योजना के अनुरूप उत्तर दिशा में जंगलों की ओर पीछे हटने का इशारा था। संकेत करते हुए धनंजय ने जान-बूझ कर यह दिखाया कि उसका ध्यान अपने साथ लड़ते कोसल के सैनिक से थोड़ा सा हट गया है। कोसल के सैनिक को जैसे ही यह अहसास हुआ उसने अपनी तलवार का एक सीधा वार धनंजय की छाती को निशाना बनाकर किया। धनंजय ने दाईं ओर झुकते हुए अपने आप को बचाने की कोशिश की मगर तलवार के वार को हल्का सा अपने बाएं कंधे पर लग जाने दिया। इसके बाद धनंजय ने कुछ यूं जाहिर किया मानो उसे खूब गहरी चोट लगी हो और वह इस चोट के दर्द को सह न पा रहा हो। ऐसा करते हुए उसने अपना घोड़ा पीछे की ओर कुछ ऐसे हटाना शुरू किया मानो वह मैदान छोड़ कर भाग रहा हो। मेकल के बाकी सैनिक भी उसके साथ उत्तर दिशा की ओर यूं पीछे हटने लगे मानो वे भी मैदान से भाग रहे हों। उन्हें ऐसा करते देख कोसल के सैनिक भी उनके पीछे बढ़े। किंतु नील की अपेक्षा के विपरीत कोसल की सिर्फ आधी सेना ही उनके पीछे भागी और शेष आधी सेना ने वहीं रुकते हुए शिविर में कोसल का झंडा लहरा दिया। उनमें से कुछ ने तो विश्राम करना भी शुरू कर दिया और कुछ ने उल्लास में मदिरा की बोतलें खोल लीं। यह इस बात का संकेत था कि उन्होंने रण जीत लिया था और उनकी मंशा तब तक वहीं रुकने की थी जब तक आगे बढ़ी टुकड़ी से कोई बुलावा न आए।

सात

आज गुंजन का शत्वरी से संगीत सीखने का पहला दिन था। एक छोटे से कमरे में एक ओर वीणा, मृदंग आदि कुछ वाद्य रखे थे। साथ ही थोड़ी ऊंचाई पर सरस्वती की एक मूर्ति रखी थी। बगल वाली दीवार पर एक भित्तचित्र बना था जिसमें किसी गंधर्व और अप्सरा की एक साथ नृत्य करती हुई तस्वीर बनी थी। चटाई पर गुंजन और शत्वरी आमने-सामने बैठे थे। गले में बंधे काले धागे में पिरोए चांदी के सफेद सिक्के को दाएं हाथ की उंगलियों से घुमाता गुंजन चेहरे पर कुछ घबराहट और असहजता के भाव लिए बैठा था। कमर पर बंधी आसमानी रंग की रेशमी साड़ी के एक भाग को चोली के ऊपर पल्लू की तरह डाले शत्वरी पूरे आत्मविश्वास से बैठी थी। दाहिनी ओर सरके साड़ी के संकरे पल्लू की बगल से शत्वरी की पतली कमर और मध्यपट का नाभि से लेकर चोली तक का भाग साफ दिख रहा था। किंतु संगीत सीखने की व्याकुलता में बैठे गुंजन का ध्यान शत्वरी के इस कमनीय रूप पर नहीं जा रहा था। या फिर वह जानबूझ कर अपनी दृष्टि शत्वरी के मोहक रूप पर नहीं डाल रहा था ताकि उसका शत्वरी पर आसक्त न होने का संकल्प बना रहे।

'गुंजन तुम्हारा गाना तो मैंने सुन लिया है किंतु तुमने कहा था कि तुम बांसुरी भी बजाते हो। मुझे बांसुरी सुनाओ,' शत्वरी ने गुंजन के व्याकुल चेहरे पर अपनी दृष्टि जमाते हुए कहा।

'मैं तो यहां आपसे संगीत सीखने आया हूं, अपना संगीत सुनाने नहीं,' गुंजन के स्वर में हल्की घबराहट झलक रही थी।

'हां परंतु जब तक मैं अच्छी तरह यह जान न लूं कि तुम्हें संगीत का कितना

ज्ञान है, सुरों की कितनी समझ है, सांसों पर कितना नियंत्रण है तब तक मैं तुम्हें अच्छी तरह संगीत कैसे सिखाऊंगी?'

'आप कहती हैं तो ठीक है, बस मेरी हंसी न उड़ाइएगा,' गुंजन की घबराहट में कुछ शर्माहट भी घुल गई।

'गुरु कभी अपने शिष्य की हंसी नहीं उड़ाता, वर्ना उसकी अपनी शिक्षा की ही हंसी उड़ती है,' शत्वरी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से मुस्कुराते हुए कहा।

सजीली आंखों की मुस्कुराहट ने गुंजन के मन में एक मीठी कसक पैदा की, मगर तुरंत ही गुंजन ने खुद को याद दिलाया कि शत्वरी तो उसकी गुरु है और इस कारण आदरणीय भी है। उसने मन को साधा और पास पड़ी एक बांसुरी उठाई और दोनों हाथों की उंगलियां उस पर जमाते हुए उसे अपने होंठों पर रख कर एक लोकगीत पर बनी किसी आरती की धुन बजाने लगा। उसकी सांसें सध कर उसकी उंगलियों से संगत करने लगीं। शत्वरी ने गौर किया कि गुंजन की बांसुरी पकड़ने की शैली और सांस के प्रवाह पर नियंत्रण अच्छा था। शुद्ध और कोमल स्वर भी वह अच्छी तरह बजा रहा था। आरती की धुन और बांसुरी से अच्छी तरह निकलते सुर एक सात्विक प्रभाव उत्पन्न कर रहे थे जिसमें शत्वरी डूब सी गई।

गुंजन ने जब आरती की धुन पूरी की तो शत्वरी ने चहकते हुए कहा, 'गुंजन तुम तो बांसुरी भी अच्छी तरह बजा लेते हो। यदि तुम अपनी शिक्षा पर पूरा ध्यान दो तो तुम एक बड़े संगीतज्ञ बन सकते हो।'

गुंजन का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसके चेहरे से घबराहट और असहजता के सारे भाव चले गए। थोड़ी देर रुकते हुए शत्वरी ने फिर कहा, 'अच्छा गुंजन यह तो बताओ संगीत सीखने के बाद तुम क्या करोगे?'

'बस यूं ही गाया-बजाया करूंगा, लोगों का मन बहलाऊंगा और खुद भी संगीत का आनंद लूंगा,' गुंजन ने भोलेपन से जवाब दिया मानो एक गायक या संगीतकार के रूप में उसकी कोई महत्वाकांक्षा न हो।

'क्यों? तुम भी आचार्य जी की तरह संगीत के आचार्य बन सकते हो। समाज में अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान बना सकते हो।' शत्वरी ने उसमें कुछ महत्वाकांक्षाएं जगानी चाहीं।

'आप मुझे ऐसे सपने न दिखाएं जो पूरे न हो सकें। ऐसा ही एक सपना मेरे पिता ने भी देखा था। एक शूद्र होते हुए भी उन्होंने एक ब्राह्मण स्त्री से प्रेम किया था। किंतु समाज ने उनके प्रेम को नहीं स्वीकारा। उन्हें शहर छोड़ कर इस गांव में आना पड़ा था,' गुंजन एक बार फिर मायूस हो उठा।

'यह तो अनुचित है और जो अनुचित है उसे सही किया जाना चाहिए। क्या तुम्हें नहीं लगता कि तुम्हारे साथ वह न्याय हो जो तुम्हारे माता-पिता के साथ नहीं हुआ।' शल्वरी के स्वर में थोड़ी उत्तेजना उभर आई।

'उचित-अनुचित का निर्णय करने वाले हम कौन होते हैं? यह तो हमें धर्म और नीति के ज्ञाताओं पर ही छोड़ देना चाहिए।'

'पर जो हुआ वह सही तो नहीं लगता। आचार्य जी का कहना है कि सृष्टि की रचना प्रेम का आनंद लेने के लिए हुई है। फिर दो प्रेमियों का प्रेम स्वीकार न कर समाज ने तो धर्म के विरुद्ध ही काम किया है। गुंजन क्या तुम्हें समाज पर क्रोध नहीं आता? क्या तुम्हें नहीं लगता कि तुम्हारे साथ अन्याय हो रहा है? एक ब्राह्मण स्त्री का बेटा होते हुए भी तुम्हें गाड़ी चलाने का काम करना पड़ रहा है।'

'गाड़ी चलाने से तो मुझे कोई परेशानी नहीं है। मुझे तो इसमें आनंद ही आता है। खुली हवा में घूमना, सवनाही गाना, बैलों के घुंघरुओं की रुनझुन सुनना, इन सबमें बड़ा आनंद आता है,' गुंजन ने शांत स्वर में कहा, 'लेकिन मेरा भी मन करता है कि मैं शास्त्रों को पढ़ूं, धर्म और नीति को समझूं। किंतु शूद्र ठहरा ना। शास्त्र तो क्या मुझे तो शास्त्रों की भाषा तक नहीं आती।'

ऐसा कहते हुए गुंजन की मायूसी कुछ और बढ़ गई। शल्वरी उसके दुखी चेहरे को देखती रही। उसे गुंजन के रूप में पिंजरे का वह पक्षी दिख रहा था जिसे पिंजरे में रहने की इतनी आदत हो चुकी थी कि उसे खोलने पर भी उसमें उड़ने की कोई चाह नहीं होती।

'क्या शूद्रों को शास्त्रों का अध्ययन करने की अनुमति नहीं है?' शल्वरी ने शास्त्रीजी से पूछा। उसकी त्यौरियां कुछ चढ़ी हुई थीं।

'ऐसा तुमसे किसने कहा?' शास्त्री जी ने उल्टा प्रश्न किया।

'किसी ने नहीं, परंतु शास्त्रों की शिक्षा ब्राह्मणों को ही क्यों दी जाती है?'

'क्योंकि शास्त्रों को पढ़ना और पढ़ाना ब्राह्मणों का धर्म है। यही परंपरा है।'

'यदि कोई शूद्र शास्त्रों की शिक्षा लेना चाहे तो?'

'यदि उसमें योग्यता है तो वह ले सकता है।' शास्त्री जी ने शांत स्वर में कहा। लेकिन उनके चेहरे पर चिंता की कुछ रेखाएं उभर आईं। उन्हें शंका हो चली थी कि शल्वरी का प्रश्न गुंजन से सबंधित है।

'इस योग्यता का निर्णय कौन करता है?'

'निश्चित रूप से गुरु या आचार्य। मगर तुम यह प्रश्न क्यों पूछ रही हो?' शास्त्री जी ने अपनी आशंका को सुनिश्चित करने के लिए पूछा।

'यदि गुंजन में योग्यता हो तो क्या आप उसे शास्त्रों की शिक्षा देंगे?' शत्वरी ने शास्त्रीजी की आशंका को सुनिश्चित करने में अधिक समय नहीं लिया।

'तुम्हें गुंजन में इतनी रुचि क्यों है?'

'रुचि नहीं सहानुभूति,' शत्वरी ने कहा, 'मुझे नहीं लगता उसके साथ न्याय हो रहा है। उसमें ब्राह्मणों वाले गुण और योग्यता है। उसकी मां शहर के एक कुलीन घर की ब्राह्मण स्त्री थी। परंतु फिर भी उसे अपने पिता की तरह शूद्रों वाला व्यवसाय करना पड़ रहा है।'

'कोई भी काम छोटा नहीं होता। समाज को गाड़ी चलाने वाले की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि एक पंडित या शास्त्री की। यदि वह गाड़ी चला कर खुश है तो तुम्हें क्या समस्या है?'

'बात उसके व्यवसाय की नहीं है, बात है उसकी भावनाओं की, उसकी इच्छाओं की। उसमें पढ़ने और सीखने की इच्छाएं हैं। आपने ही तो कहा था कि इच्छा शक्ति का स्वरूप होती है इसीलिए उसे इच्छाशक्ति कहा जाता है। यदि किसी की इच्छाएं मर जाएं तो उसकी शक्ति भी मर जाती है।'

'हां यह तो सच है किंतु मनुष्य के मन में तो अनंत इच्छाएं होती हैं। जो इच्छाएं अव्यावहारिक हों उन पर नियंत्रण भी करना पड़ता है।'

'क्या आप के कहने का अर्थ है कि किसी शूद्र के लिए शास्त्रों का अध्ययन करना अव्यावहारिक है?'

'पूरी तरह तो नहीं। यह तो उसकी योग्यता और गुण ही निर्धारित कर सकते हैं। किंतु यदि सभी शूद्र बाह्मणों का काम करने की इच्छाएं पालने लगें तो फिर शूद्रों के काम कौन करेगा? समाज कैसे चलेगा?' शास्त्री जी ने एक बार फिर उसे समझाने का प्रयास किया।

'मैं सभी शूद्रों की बात नहीं कर रही। मैं तो सिर्फ गुंजन की बात कर रही हूं। क्या आप उसकी योग्यता परखेंगे? यदि वह योग्य हुआ तो क्या आप उसे शास्त्रों की शिक्षा देंगे?' शत्वरी ने आग्रह करते हुए कहा।

'मुझे इस विषय में सोचना होगा। मैं तुम्हें विचार करके उत्तर दूंगा।' शास्त्री जी ने शत्वरी को कोई सीधा आश्वासन नहीं दिया। शत्वरी को भी लगा कि यह इतना आसान मामला न था। यदि शास्त्री जी जैसे उदार व्यक्ति को भी सोचना पड़ रहा था तो अवश्य कई कठिनाइयां होंगी।

शत्वरी के आग्रह ने शास्त्री जी को संकट में डाल दिया था। यह तो सच था कि मनुष्य को अपना धर्म और व्यवसाय अपने गुणों और योग्यताओं के आधार पर चुनना चाहिए। वेदों और उपनिषदों के कई रचयिता क्षत्रिय कुल के ही थे। वाल्मीकि, वेदव्यास और विश्वामित्र जैसे महर्षि अपने जन्म नहीं बल्कि गुणों के आधार पर ही महा ऋषि बने थे। किंतु वर्ण-व्यवस्था की भी अपनी चुनौतियां थीं। कई तरह के राजनैतिक दबाव भी थे। जिन ब्राह्मणों को राजनैतिक संरक्षण मिले हुए थे उनका समाज में प्रभुत्व बढ़ रहा था। शूद्रों की स्थिति चिंताजनक हो रही थी। अस्पृश्यता और छुआछूत की परंपरा बढ़ रही थी। किंतु इन तमाम चुनौतियों के बाद भी वर्ण व्यवस्था काम कर रही थी। समाज की गति बनी हुई थी। कोई भी ऐसा बड़ा विरोध या विद्रोह नहीं हुआ था जैसा कि कई अन्य म्लेच्छ सभ्यताओं में सुनने मिल रहा था।

किंतु क्या स्थिति यही रहने वाली है? या चुनौतियां और बढ़ने वाली हैं? समस्याएं और बढ़ने वाली हैं? यदि शूद्रों का असंतोष बढ़ा तो क्या होगा? यदि उन्होंने विद्रोह किया तो उनसे कैसे निपटा जाएगा? मगर वर्तमान प्रश्न तो यही है कि गुंजन को शास्त्रों की शिक्षा दी जाए या नहीं? परंपरा के अनुसार तो शास्त्रों की शिक्षा ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही दी जाती है। किंतु परंपरा इतनी कठोर भी नहीं है। शूद्रों के अपने मंदिर हैं। उनके अपने पंडित और पुरोहित हैं जो शूद्र ही होते हैं। उन्हें भी धार्मिक रीतियों और अनुष्ठानों का ज्ञान होता है। तो गुंजन क्यों नहीं शास्त्रों को सीख सकता?

शास्त्री जी ने यह सोचते हुए निर्णय किया कि वे गुंजन की योग्यता परखेंगे। यदि वह योग्य हुआ तो उसे शिक्षा भी देंगे। एक दिन उन्होंने गुंजन को बुलाया।

'शत्वरी ने मुझसे कहा है कि तुम वेदों और धर्मशास्त्रों की शिक्षा लेना चाहते हो?' शास्त्री जी ने एक पैनी दृष्टि गुंजन के चेहरे पर डालते हुए पूछा।

'जी हां, मैंने ही उनसे यह कहा था।'

'जान सकता हूं क्यों? क्यों पढ़ना चाहते हो शास्त्रों को?' शास्त्री जी की दृष्टि गुंजन के चेहरे के भावों को भेद रही थीं।

'क्योंकि जीवन को समझना चाहता हूं,' गुंजन ने अपने चेहरे का परीक्षण करती दृष्टि का सामना करते हुए कहा।

'जीवन तो तुम्हारे भीतर है, उसे ग्रंथों में क्यों ढूंढ़ते हो?' शास्त्री जी ने आंखों को कुछ सिकोड़ते हुए पूछा।

'मेरे जीवन के अनुभव सीमित हैं। उन ऋषियों और महर्षियों के अनुभवों

से भी सीखना चाहता हूं जिन्होंने जीवन को मुझसे अधिक अनुभव किया है। जिनके आध्यात्मिक अनुभव रहे हैं,' गुंजन के स्वर में आत्मविश्वास की झलक थी। शास्त्रों को सीखने की तीव्र उत्कंठा में वह शास्त्री जी जैसे प्रबल व्यक्तित्व से भी भयभीत नहीं लग रहा था।

'तुम कैसे जानोगे कि उनके अनुभव अच्छे हैं या बुरे, सच्चे हैं या झूठे, तुम्हारे काम के हैं या नहीं?'

'इसीलिए तो गुरु की आवश्यकता है। गुरु ही यह निर्धारित करेंगे,' गुंजन ने आत्मविश्वास से कहा।

'तुम मुझे बुद्धिमान लगते हो। मुझे लगता है तुममें शास्त्रों को सीखने की योग्यता है। मैं तुम्हें शिष्य बनाने को तैयार हूं,' शास्त्री जी ने मुस्कुराते हुए कहा। उनकी आंखें सामान्य हो गईं और माथे की सिलवटें भी हट गईं।

गुंजन के हर्ष का ठिकाना न रहा। आखिर साहस और आत्मविश्वास काम आ ही गए। उसने झटपट झुकते हुए शास्त्री जी के पैर छुए। शास्त्री जी ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, 'कल ब्रह्म मुहूर्त में शिक्षा प्रारंभ करेंगे। समय पर आ जाना। मैं अपने शिष्यों से समय पर आने की अपेक्षा करता हूं।'

'निश्चित रूप से। आपको मुझसे कभी कोई शिकायत न होगी,' गुंजन ने प्रसन्नता में नहाई विनम्रता से कहा।

आचार्य जी के घर से बाहर निकल कर शत्वरी ने देखा कि गुंजन अब तक गाड़ी लेकर नहीं आया है। उसे गुंजन पर थोड़ी झुंझलाहट हुई। फिर सोचा 'शायद कुछ समस्या होगी। शायद बैल ही थक गए होंगे। इन बैलों को भी आराम कहां? कभी बैलगाड़ी में जुतते हैं, कभी कोल्हू में और कभी खेतों के हलों में। समाज भी अजीब है, इन पशुओं पर अन्याय भी करता है और फिर इन्हें पूजता भी है। क्या वह इन्हें अपने स्वार्थ से पूजता है या फिर करुणावश?'

'आइए आज तो हमारी घोड़ागाड़ी पर विराजिए। आपको आपके घर छोड़ दूंगा और शास्त्री जी को प्रणाम भी कर लूंगा।' शत्वरी ने मुड़कर देखा, पीछे दामोदर खड़ा था, अनुरोध करता हुआ।

'नहीं गुंजन आता ही होगा। पता नहीं कहां रह गया।' शत्वरी ने अपनी आंखें फेरीं और सामने सड़क पर जमाईं, जैसे वह न जाने कब से गुंजन की राह निहार रही हो।

'आइए घोड़ागाड़ी में बैठकर तो देखिए, इतनी सरपट दौड़ती है कि जब तक

आपका गुंजन आएगा तब तक तो आप पहुंच चुकी होंगी।' दामोदर का अनुरोध थोड़े हठ में बदल गया।

'हां यह तो ठीक है, मगर गुंजन तो यहां मुझे लेने ही आ रहा है, मुझे यहां न पाकर उसे अच्छा नहीं लगेगा,' शत्वरी ने सड़क पर ही दृष्टि जमाए हुए कहा। एक बार फिर उसकी आंखें दामोदर को संकेत कर रही थीं कि वह उसे टालना चाह रही थी।

'आपको उस गाड़ीवाले की भावनाओं की बड़ी चिंता है किंतु अपने इस मित्र की भावनाओं का कुछ भी नहीं,' दामोदर के स्वर में थोड़ा व्यंग्य उभर आया। शत्वरी का यूं टालना उसे कुछ आहत सा कर गया।

'अभी हमारी मित्रता हुई ही कहां है। आप कुछ अधिक ही उतावले हो रहे हैं,' आंखों के सामने गिर आई बालों की एक लट को एक ओर झटकते हुए शत्वरी ने अपनी चंचल आंखें दामोदर की आंखों से मिलाईं।

शत्वरी की आंखों में उतरी शरारत से दामोदर कुछ झेंप सा गया मगर फिर भी उसने अपना हठ न छोड़ा, 'इसीलिए तो कह रहा हूं आपको घर छोड़ देता हूं। थोड़ी देर का साथ रहेगा, बातचीत भी हो जाएगी और मित्रता भी।'

'सरपट दौड़ाने वाली गाड़ी में समय ही कितना मिलेगा? कोई अन्य योजना बनाइए, कहीं इस उतावली में आप फिर कोई भूल न कर बैठें।' शत्वरी की चंचल आंखों से एक बार फिर शरारत छलक उठी।

दामोदर को शत्वरी का व्यंग्य और संकेत समझ में आ गया। उसने आगे चुप रहना ही ठीक समझा।

इतनी ही देर में बैलगाड़ी लेकर गुंजन भी वहां आ पहुंचा।

'क्षमा करिएगा, आने में देर हो गई। बारिश के दिन हैं, रास्ते में गाड़ी का चक्का कीचड़ में फंस गया था, उसे ही निकालने में देर हो गई,' गुंजन का चेहरा पसीने से भीगा था।

'कोई बात नहीं गुंजन, बैलगाड़ी ही है, कोई घोड़ागाड़ी तो नहीं कि सरपट दौड़े,' शत्वरी ने अपने निचले होंठ को हल्के से दांतों के नीचे दबाया और फिर उसी शरारती दृष्टि से दामोदर की ओर देखा। दामोदर कुछ और झेंप गया।

वह सोचने लगा, 'शत्वरी मुझसे मित्रता करने में कोई खास रुचि नहीं दिखा रही है। कहीं मेरे उतावलेपन से वह मुझे कोई ऐसा रसिक युवक तो नहीं समझ रही है जो हर जवान लड़की पर फिसल जाता हो? परंतु शत्वरी तो मुझे बचपन से ही पसंद है। उम्र के अंतर के कारण ही उससे कभी मित्रता करने का अवसर

नहीं मिला। परंतु अब तो वह जवान हो गई है, इस उम्र में चार-पांच वर्ष का अंतर तो कोई बड़ा अंतर नहीं होता। मुझे थोड़े धैर्य से काम लेना चाहिए।

'तुम्हारी शास्त्रों की पढ़ाई कैसी चल रही है गुंजन?' शत्वरी ने घोड़ागाड़ी में बैठते हुए पूछा।

'अच्छी चल रही है। शास्त्रीजी ने हमें बहुत सी ऐसी बातें बताई हैं जिनका हमें तो कोई ज्ञान था ही नहीं,' गुंजन ने बैलों को हांकते हुए कहा।

'कैसी बातें? हमें भी तो बताओ। हम भी तो कुछ सीखें।'

'आपको तो पता ही होगा। शास्त्री जी ने कहा कि सृष्टि में हर जगह ब्रह्म मौजूद है। प्रत्येक चराचर वस्तु में। हम सब ब्रह्म का ही अंश हैं। हर आत्मा परमात्मा का ही स्वरूप है। इसीलिए न तो कोई छोटा है और न ही कोई बड़ा,' यह कहते हुए गुंजन के चेहरे पर कुछ प्रसन्नता और गर्व के भाव उभर आए।

'आचार्य जी भी यही कहते हैं कि यह सृष्टि शिव और शक्ति के प्रेम की ही लीला है। हम सब शिव और शक्ति के प्रेम से ही पैदा हुए हैं, इसलिए हम सब बराबर हैं, एक ही माता-पिता की संतानों की तरह।

'यदि हम सब बराबर हैं और यह सृष्टि प्रेम की ही लीला है तो फिर यह समाज एक शूद्र और एक ब्राह्मण के परस्पर प्रेम को क्यों नहीं स्वीकारता? आप ठीक ही कहती थीं, समाज धर्म के विरुद्ध काम करता है,' गुंजन ने यूं कहा जैसे फिर कोई पुरानी टीस उभर आई हो।

'समाज में हर कोई धर्म की अपने हिसाब से व्याख्या करता है। हर पंडित, आचार्य जी या पिताजी की तरह विद्वान नहीं होता,' शत्वरी ने कहा, फिर होंठों पर एक शरारती मुस्कान लपेटते हुए गुंजन के कुछ करीब जाकर कहा 'अच्छा गुंजन, यदि तुम्हें किसी ब्राह्मण लड़की से प्रेम हो गया तो तुम क्या करोगे?'

गुंजन के चेहरे पर शर्म की लाली उभर आई, उसने आंखें झुकाते हुए कहा 'कोशिश करूंगा कि ऐसा हो ही ना।'

'प्रेम किया नहीं जाता, वह तो हो जाता है,' शत्वरी की ठिठोली करती मुस्कान उसकी आंखों तक पहुंच गई।

गुंजन को एक बार फिर वही मीठी कसक हुई। क्या कहना चाहती है शत्वरी? क्या वह अपने प्रति मेरे झुकाव को समझती है? क्या वह कोई संकेत करना चाहती है? मगर तुरंत ही उसने अपने विचारों को काबू किया, 'हां, परंतु मन पर भले बस ना चले, कर्म पर तो चल सकता है। शास्त्री जी कहते हैं कि मनुष्य को

अपने स्वार्थ से कर्म नहीं करने चाहिए, कर्म तो ऐसे होने चाहिए कि उनसे सबका भला हो। यदि हमारे प्रेम से हमारे परिवार वालों को, समाज को परेशानी हो तो हमें उस प्रेम संबंध को आगे ही नहीं बढ़ाना चाहिए, इसी में सबकी भलाई है।'

'मैं तुमसे सहमत नहीं हूं, ऐसा करके तो तुम समाज का स्वार्थ ही पूरा करोगे। इसमें धर्म और मानवता की भलाई कहां है? मनुष्य का कर्म तो धर्म के अनुकूल होना चाहिए, और धर्म कहता है कि प्रेम से बढ़कर कुछ नहीं है।' अचानक ही शत्वरी की त्यौरियां चढ़ आईं। पहले वाली शरारत आंखों से गायब थी।

'आप तो मुझे बेकार के ही तर्कों में उलझा रही हैं। यह शास्त्रार्थ करने का समय थोड़े ही है।' गुंजन ने इस विषय को टालना चाहा। मगर साथ ही उसके चेहरे पर चिंता की एक रेखा उभर आई।

वह सोचने लगा, कहीं शत्वरी उससे संबंध बढ़ाने को तो इच्छुक नहीं है? क्या वह सच में उसे चाहती है? पसंद तो वो भी करता है शत्वरी को। परंतु यह संबंध वैध ना होगा। ईश्वर ना करे ऐसा कुछ हो।